शान्ति सन्देश

व्यवस्थापक
उदित नारायण चौधरी, झंडापुर

सम्पादक
चन्द्रधर प्रसाद नन्दकयुलियार

वार्षिक मूल्य ४॥) जुलाई १९५६ प्रति अङ्क

"शान्ति-सन्देश" के ग्राहकों और पाठकों को आवश्यक सूचना

'शान्ति-सन्देश' की एक प्रति का मूल्य ।=) आने और वार्षिक ग्राहकों के लिये ४॥) रुपये हैं। वार्षिक ग्राहकों को एक विशेषांक अतिरिक्त मिलेगा। हर महीने ठीक जाँच कर प्रत्येक पत्रिका भेजी जाती है। इतने पर भी पत्रिका नहीं मिलने की शिकायतें आती रहती हैं। हमें लिखने के पहले आप डाकखाने से आवश्य दरियाफ्त कर लिया करें। कई अनिवार्य कारणों से 'शान्ति-सन्देश' के ३-४ अंक पिछड़ गये हैं, जिन्हें शीघ्र ही निकालने के प्रयत्न में हम लगे हुए हैं; कृपालु ग्राहकों और पाठकों को अधीर या सशंक हो कर कभी अनावश्यक पत्रव्यवहार नहीं करना चाहिए। आपका प्रत्येक अंक आपको अवश्य मिलेगा। फिर भी हमारा स्पष्ट निवेदन यह है कि आप इस में हमारी सहायता करें। आप जानते हैं कि यह पत्रिका आर्थिक लाभ के लिये नहीं निकाली जाती है। इसका लक्ष्य तो संतों की वाणी का प्रसाद बांट कर आपकी आध्यात्मिक क्षुधा को तृप्त करना है। इसलिये 'शान्ति-सन्देश' को बहुत घाटा सहना पड़ता है। अन्य पत्रिकाओं की तरह विज्ञापन इस में छाप कर पैसे नहीं बनाये जाते। इसकी आमदनी का एक मात्र जरिया आपका चन्दा और कुछ प्रेमियों का दान है। इसलिये, जिन प्रेमी ग्राहकों के पास चन्दा बकाया है, उनसे हमारा निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र अपना चन्दा भेज कर पत्रिका को सुचारु रूप से चलाने में हमारी सहायता करें। सभी अत्संग प्रेमी भाइयों से करबद्ध प्रार्थना है कि वे नये ग्राहक बनाने की ओर अवश्य ध्यान दें। हमारा अगला अंक नवम्बर का होगा। इसका यह अर्थ आप नहीं लगा लीजिएगा कि आप के पिछले अंक आपको नहीं मिलेंगे। हम पुनः कह देना चाहते हैं कि आपका एक-एक अंक आपको अवश्य मिले गा। आप के अनावश्यक पत्रव्यवहार से कार्यालय का खर्च बढ़ता है। पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिख दिया करें। रुपया-पैसा हमेशा व्यवस्थापक के पते से भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक
'शान्ति-सन्देश'
पो० झंडापुर, भागलपुर

लेख और लेखक

	पृष्ठ
(१) सन्त दरिया साहब (बिहारी) की एकवाणी—व्याख्याकार स्वामी मेंहीं दास जी महाराज	१
(२) सत्संगसुधा (ईश्वर भक्ति कैसे की जाय ?) - स्वामी मेंहीं दास जी महाराज ...	३
(३) विचार का चरित्र पर प्रभाव (गतांक से आगे) श्री नीलकंठ	१६
(४) एक प्रतिवाद पत्र—श्री उदित नारायण चौधरी	१९
(५) सम्पादकीय—संतों की क्रान्तिकारिता	२५

वर्ष ६] जुलाई, १९५६ [अङ्क ७

सन्त दरिया साहब (बिहारी) की एक वाणी

व्याख्याकार—स्वामी श्री मेंहीं दास जी महाराज

घना मोती झरे जोति जगमग बरे घटा घन घेरि चहुँ ओर फेरा ।
बुन्द अखण्ड सुर चले ब्रह्मंड के काम की फौज सब घेरि टेरा ।
त्रिवेनी मध्य तहाँ सुरति सनमुख कियो सुखमना घाट कहँ दृष्टि हेरा ।
पलक में झलक चहं मंदिल छवि छाइया ब्रह्म पुनीत नाह बहुरि फेरा ।
भेद बंका बड़ा काल संका नहीं ज्ञान घर खुलित सब कर्म जेरा ।
ध्यान लगा रहे गगन घन गरजिया कुमति कुबुधि होए रहत चेरा ।
बैन विचारि एह लगन लागा रहे मगन सभ दिन कियो गगन डेरा ।
संत सुजान जिन्ह सब्द विचारिया कहे दरिया सोइ दास मेरा ।

[शायद सारे संत-वंश में, वेद से लेकर आधुनिक काल तक, कोई ऐसे संत नहीं मिलेंगे जिन्होंने पद न कहे हों । कवि होना सन्त के लिये आवश्यक है । फिर भी याद रखने की बात यह है कि सत साधक पहले हैं और कवि पीछे । साधन-मार्ग पर चलते हुए उन्हें जो अनुभूति हुई, उसका वर्णन शब्दों में जहां तक हो सकता है, वहां तक तो उन्होंने किया; फिर भी वे रहस्यवादी कहे जाने लगे । सिद्ध, ऋषि, मुनि, सत्पुरुष, साधक, सन्त आदि एक ही तरह के व्यक्तियों का नाम है । इन्होंने जन-साधारण को समझाने के लिये लोक-साहित्य में अपनी बातें कहीं । अगर इनकी बातें लोक-साहित्य में नहीं कही जातीं तो हिंदी का काव्य भंडार बिल्कुल रिक्त सा रहता । सन्त-काव्य हिन्दी साहित्य की एक बहुमूल्य;

निधि है । इस निधि का मूल्यांकन करने के लिये या आनन्द प्राप्त करने के लिये उसमें डूबना पड़ेगा; जो इसमें डूबे हुए हैं उनकी संगत किये बिना आप संत-साहित्य का पूरा आनन्द नहीं उठा सकते । हमें अपने पाठकों को यह बतलाते हुए आपर हर्ष हो रहा है कि परम सन्त स्वामी मेंहीं दास जी महाराज ने, संत-काव्य को समझाने के लिये, ऐसे पदों की व्याख्या कर देने की कृपा की है, जो आपको कठिन या दुरूह मालूम पड़े । संत काव्य के प्रति उनकी इस सेवा के लिये 'शान्ति-सन्देश' उनका आभारी है । पाठकों एवं संत साहित्य जिज्ञासुओं से निवेदन है कि पूछे गये वन्द (पदों) को कागज की एक ओर साफ-साफ लिखकर हमारे कार्यालय के पते पर भेज दें । लिफाफ पर हमेशा लिख दिया करें—'व्याख्या के लिये' और साथ ही उत्तर के लिये टिकट भेज दिया करें । यहां संत दरिया साहब (बिहारी) के एक पद को व्याख्या दी जाती हैं ।

—सम्पादक]

भावार्थ—

शूरमा साधक कामदेव की सेना को घेर कर ललकारता है और काम को काबू में करके ब्रह्माण्ड अर्थात्, सूक्ष्म मंडल में प्रवेश करता है और वहां अनुभूतियों में पाता है कि सघन मोती झरता है, जगमग ज्योति बरती है, चारो ओर फेरा लगा कर बादल घिरा है और अखण्ड बूंद की वृष्टि होती है । इड़ा, पिंगला सुषुम्ना के मिलन-स्थान के बीच के सन्मुख सुरत को प्रवेशित किया । (इस तरह) सुषुम्ना घाट को दृष्टि से देखा । इसकी झलक (आँख बन्द कर अभ्यास करने में) पलक के अन्दर होती है । चारों मन्दिरों (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और सत्तलोक) में प्रकाश की छवि प्रसारित रहती है, पवित्र साधक वहाँ से फिर ब्रह्म नहीं लौटता है । अर्थात्, फिर संसार में नहीं भेजा जता है । यह भेद बहुत ही उत्तम है, इस-में काल द्वारा बिघ्न-बाधा और आपदा प्राप्त होने का संशय नहीं है । ज्ञान का घर खुल जाता है और सब कर्मबन्ध नीचे गिर जाते हैं । (साधक-अभ्यासी को कर्मबन्ध बाँध नहीं सकते ।) यदि ध्यान लगा रहे तो भक्त साधक अन्तर-आकाश के बादल-गर्जन की ध्वनि सुनता रहेगा और उसकी कुबुद्धि उसकी दासी बन जायगी । अथर्त्, उस पर वह प्रबल नहीं होगी, वह अभ्यासी भक्त कुबुद्धि के आधीन नहीं होगा । कथित वाणी को विचार कर ध्यान का लगन लगा रहे और मगन होकर साधक भक्त गगन में डेरा करे । दरिया साहब कहते हैं—हे सुजान संत ! जो मेरे शब्द को विचारते हैं वही मेरे भक्त हैं ।

प्रेषक—महावीर 'संतसेवी' ।

ईश्वर भक्ति कैसे की जाय ?

322

स्वामी श्री मेंही दास जी महराज

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मेरे कहने का विषय ईश्वर भक्ति है । ईश्वर भक्ति के लिये पहले ईश्वर का स्वरूप जानना चाहिए । ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना आप उसी तरह चलियेगा, जिस तरह किसी को निर्दिष्ट स्थान मालूम नहीं है और वह चलता हो । ईश्वर का स्वरूप इन्द्रिय ज्ञान से परे है । इन्द्रियज्ञान में जो आते हैं वे किसी न किसी तरह नाशवान हैं ।

"गो गोचर जह लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई ।।"

इन्द्रियों को जो कुछ प्रत्यक्ष है सब माया है । दूसरी बात यह याद कीजिये कि अपने राजत्वकाल में श्री राम ने प्रजा को बुलाकर अध्यात्म-ज्ञान की शिक्षा दी थी । श्री राम के राज्य को लोग आज भी बहुत अच्छा कहते हैं । अति उत्तम राजनीति बनाकर प्रजा को सुखी करना ही श्री राम का काम था । उन्होंने सोचा कि प्रजा इस संसार में तो सुखी है ही, शरीर छूटने के बाद भी ये सुखी रहें, दुःखी न हों, इस लिये प्रजा को बुलाकर उन्होंने शिक्षा दी थी । एक बात और हुई होगी कि श्री राम तो राजनीतिज्ञ थे, राजनीतिज्ञ ही नहीं वे राज-नीतिज्ञों के आचार्य थे । जो बातें तुलसीकृत रामायण या बाल्मीकि रामायण में अयोग्य जँचती हैं हो सकता है वे क्षेपक हों । श्री रामने सोचा होगा कि प्रजा को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि जिससे वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहे । लोग समझते हैं कि अर्थ हीन बहुत दुखी होता है । गोस्वामी तुलसी-दास जी ने कहा है कि "नहीं दरिद्र सम दुख-जग माहीं" । लोग अर्थ के लालच के कारण ही चोरी, डकैती, बमारी, बेईमानी, लूट आदि किया करते हैं

"ज्ञान सरोवर में लिखा है कि महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों को नित्य सोने की थाली में भोजन कराते थे । एक दिन एक ब्राह्मण एक थाली चुरा ले गये । खोज करने पर पता

चला कि अमुक ब्राह्मण ने थाली चुराई है । चोर को दण्ड मिलना चाहिये । किन्तु ब्राह्मणों के अदण्डनीय होने के कारण उन्हें दण्ड दिया जाय तो कैसे ? युधिष्ठिर इस असमंजस में पड़े थे। इस न्याय के लिये भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें राजा बलि के पास जाने की अनुमति दी । भगवान् को साथ लेकर महाराज युधिष्ठिर राजा बलि के पास गये और उस ब्राह्मण के सोने की थाली चुराने की बात कही । राजा बलि बोले कि तुम्हारी प्रजा धन-हीन है इसलिये चोरी करती है, यह तुम्हारा दोष है । तुम अपनी प्रजा को पूरा धन नहीं दे सकते । तुम अपनी प्रजा को पूरा धन दो तो फिर कोई प्रजा चोरी क्यों करेगी ? इस प्रकार आप धन देकर प्रजा को सुखी कर सकते हैं । राजा लोग ऐसा ही करते थे कि उनको पूरा धन देते थे, जिससे वह चोरी डकैती आदि नहीं करती थी । लोग झूठ बोलकर, धोखा देकर, ठगकर, किसी न किसी तरह पैसा खींच लेते हैं । यह सब तो आप लोग जानते ही हैं । मगर गैर वाजिब नहीं लेना चाहिये । यदि कबीर साहब के समान खरा निर्लोभी हो तो ठीक है । उनका एक दोहा सुनिये —

"कबीर चले हाट को, कहे न कोई पतियाय ।
पांच टके का दोपट्टा, सात टके को जाय ।"

कबीर साहब कपड़े बिन-बिन कर बेचा करते थे । एकदिन वे एक चादर लेकर बाजार में बेचने गये और उस चादर का मूल्य उन्होंने पाँच रुपये बतलाये । ग्राहक उनसे तीन-चार रुपये कहते थे । अन्त में वे चादर लिये हुए घर लौट रहे थे । रास्ते में एक चतुर व्यक्ति से भेंट हो गयी । उसने कबीर साहब से पूछा "क्यों, चादर वापस ले जा रहे हैं ?" कबीर साहब ने कहा "हाँ यह चादर पांच रुपये की है किन्तु कोई पाँच रुपये देना नहीं चाहते " चतुरजन ने कहा, "मुझे यह चादर दीजिये । मैं इसे बेचकर पांच रुपये आप को दे दूँगा और इससे विशेष जो होगा, उसे मैं ले लूंगा ।" कबीर साहब ने कहा, "भाई मुझे तो पांच ही रुपये चाहिये ।" उस चादर को लेकर वह चतुर व्यक्ति बाजार गया और उसका मूल्य आठ रुपये सुनाने लगा । किसी ने सात रुपये में उस चादर को खरीद लिया । इस चतुरजन ने पांच रुपये तो कबीर साहब को दिये और दो रुपये खुद रख लिये । इस तरह यदि कोई कबीर साहब के समान सब्रदार और सन्तोषी है तो उसका भी गुजर बसर हो जाता है और जनता की निगाह में वह प्रतिष्ठा का पात्र भी समझा जाता है । किन्तु ऐसे आदमी कम होते हैं । लालची की आंख संसार भर की दौलत से उसी तरह नहीं भरती, जिस तरह ओस से कुँआं नहीं भरता । अनैतिकता से धन कमाना ठीक नहीं है । चोर-डकैत तो पहले यहीं पर पीटे जाते हैं और कचहरी में सजा पाते हैं । यहां सांसारिक सुखों में ऐसी ही बात होती है । धन-अर्जन, सांसारिक प्रबन्ध और राजनीति के साथ आध्यात्मिकता और आध्यात्मिक ज्ञान वा रूहानियत वा इल्मे रूहानी कर दो । जब एखलाक वा सदाचार ऊँचा होगा तब आत्म-ज्ञान में ऊँची

गति यानि रूहानी तरक्की होगी। संसार में सदाचरण में बरतते हुए परलोक में भी ठीक-ठीक कुशल से रहा जायगा। विषयी सदाचरण में बरतकर आत्मोन्नति पथ में नहीं चल सकता। इसी से तुलसी कृत रामायण में श्री राम का उपदेश है—"एहि तन कर फल विषय न भाई।

स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुख दाई ॥
नर तन पाइ विषय मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥"

एक बार रास्ते में जाते-जाते मुझको पंजवारा बाजार के कुछ सज्जनों ने कहा—कुछ सुनाओ। मैंने कहा—समय नहीं है थोड़े में सब सुन लो। "राम राजा सकल प्रजा।" राम व्यक्त रूप में इस धरातल पर नहीं हैं, किन्तु वे अव्यक्त रूप में हैं ही। राजा का वचन मानोगे तो सुखी रहोगे नहीं तो दुखी रहोगे। वह वचन यह है—"एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई॥" स्वर्ग में भी सभी बराबर सुखी नहीं रहते, कोई अल्प और कोई विशेष सुखी रहते हैं। श्री राम कहते हैं, वहाँ भी सुख थोड़ा ही है और अन्त में वह दुख देने वाला है। श्री राम प्रजा को विषय से विमुख करते हैं, विषय से दूसरी ओर ले जाते हैं। इल्म रूहानी की ओर ले जाने के लिये उन्होंने नसीहत दी कि जो हवास में आने योग्य चीजें हैं उनको छोड़ो। परवर दिगार को जानना चाहते हो तो हवास के इल्म के आगे जाओ।

विषय कितने हैं? रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाँच हैं। ये आँख से, कान से, त्वचा से और जिभ्या से ग्रहण किये जाते हैं। विषय-सुख-भोग में जो आराम मालूम होता है उस आराम में रहना अच्छा नहीं। स्वर्ग (बिहिश्त) में भी बेचैनी लगी रहती है यही श्री राम कहते हैं। वहाँ भी लड़ाइयाँ होती हैं। वहाँ और यहाँ में यही अन्तर है कि वहाँ भोग-विलास की सामग्री अधिक है। इस शरीर के लिये तो यह कहा गया है कि "बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा॥ नर समान नहीं कवनिउ देही। जीव चराचर जाँचत जेही।"(गो० तुलसी दास)

श्री राम ने कहा—विषय की ओर मत जाओ। इसका आशय क्या हुआ? निर्विषय की ओर जाओ। निर्विषय तत्व क्या है? जो हवास में नहीं आता, जो पंच विषयों से परे है, उस ओर चलने के लिये श्री राम उपदेश देते हैं। इन्द्रियों की पकड़ में जो आवे वह माया है। "अनविचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी" नहीं विचार करो तो संसार बहुत अच्छा है, यदि विचार करो तो यह संसार बहुत भयंकर है। तब क्या करो?—निर्विषय की ओर चलो। यदि कोई कहे, क्या निर्विषय की ओर चलना भक्ति है? मैं कहूँगा हाँ, निर्विषय की ओर चलना ही ईश्वर की ओर चलना है, यही ईश्वर की भक्ति है।" दूसरे कहते हैं कि ईश्वर तुम्हारे पास हैं, फिर बुलाओ किसको और जाओगे किसके पास? तुलसी साहब के पास एक विश्वासी मुसलमान गये, कुछ जिज्ञासा करने के लिए। उनका नाम तकी था। तुलसी साहब ने उससे कहा—

"सुन ऐ तकी न जाइयो जिनहार देखना ।
अपने में आप जलवए दिलदार देखना ।।"

फिर उसका रास्ता बताया—

"पुतली में तिल है तिल में भरा राज कुल का कुल ।
इस परदए सियाह के जरा पार देखना ।।"

यदि काले पर्दे के पार में देखो तो क्या होगा ? तो कहा -

"चौदह तबक का हाल अयां हो तुझे जरूर ।
गाफिल न हो खयाल से हुशियार देखना ।।"

यहां के भक्तों से या दूसरे देशों के भक्तों से पूछो, सभी अंतर में चलने के लिए कहते हैं । कितने मुझसे झगड़ते हैं कि ध्रुव और प्रह्लाद को क्या इन आँखों से भगवान् के दर्शन नहीं हुए ? तो मैं कहूंगा कि तुलसी-कृत रामायण में जो श्री राम ने कहा है उसे देखिये—

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई ।।"

क्या यह झूठ है ?

देवी, काली, राम, कृष्ण, शिव आदि अनेक रूपों में लोग भगवान् को मानते हैं । क्या उन अनेक रूपों में अनेक भगवान् हैं ? या केवल एक ही भगवान् सब रूपों में हैं ? रूप के दर्शन से केवल शरीर-रूप दर्शन हुआ परन्तु, उन सब रूपों में जो एक ही हैं उन आत्म रूप भगवान् का दर्शन नहीं हुआ । किसी को चतुर्भुजी, किसी को दो भुजी का दर्शन हुआ । गोसाई जी को हनुमान जी सहायक थे । हनुमान जी से तुलसी दास जी ने विनय किया कि मुझे भगवान का दर्शन कराइए । वहीं का यह दोहा है—

"चित्रकुट के घाट पर भई संतन की भीड़ ।
तुलसी दास चंदन रगड़े तिलक देत राम रघुबीर ।।"

तुलसी दास जी ने उन्हें तिलक लगाया किन्तु फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं सके । फिर घोड़े पर राजकुमार के रूप में दर्शन हुए किन्तु, फिर भी पहचान नहीं सके । तुलसी दास जी से पूछिए, उनका अपना लिखा क्या है सो पढ़िये । उनका अंतिम ग्रंथ विनय पत्रिका है । उसमें लिखा कि—

एहितें मैं हरि ज्ञान गंवायो ।
परि हरि हृदय-कमल रघुनाथहिं,
बाहर फिरतविकल भय धायो ।।१।।
ज्यों कुरंग निजअंग रुचिरमद,
अति मति हीन मरम नहिं पायो ।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,
परम सुगन्ध कहाँ ते आयो ।।२।।
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन,
ऊपर कछु सेवार तृन छायो ।
जारत हियो ताहि तज हौं सठ,
चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ।।३।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुन,
तापर दुसह दरिद्र सतायो अपने-
धाम नाम सुरतरु तजि,
विषय बबूर बाग मन लायो ।।४।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम,
मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो ।
तुलसीदास प्रभु यह विचारि जिय,
कीजै नाथ उचित मन भायो ।।५।।

जब तक गोसांई तुलसी दास जी बाहर भटकते रहे तब तक वे उसी तरह भटकते रहे जिस तरह मृगा

कस्तुरी के लिए भटकता है। जैसे कोई प्यासा जन किसी तालाब पर जाता है वहाँ पानी के ऊपर सिवार [पानी में उगने वाला एक प्रकार का घास] है, उस तृण को हटाये बिना ही पानी पीना चाहता है। आशय अपने अन्दर में आवरण हैं; जबतक उन आवरणों को नहीं हटाया जाय तबतक परमात्मा रूपी निर्मल जल को कोई नहीं पी सकता। आवरण क्या है ? इसपर कहा –

"माया वश मति मन्द अभागी ।
हृदय यवनिका बहु बिधि लागी ॥
ते सठ हठ वश संशय करहीं ।
निज अज्ञान राम पर धरहीं ॥
काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ़ परे तम कूप।"

जब तक अन्धकार के कुँए से नहीं निकलो अन्दर के आवरणों का टूटना नहीं हो सकता; जब तक अनासक्त होकर घर में नहीं रहा जायगा, तब तक ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते । इसलिये अन्धकार के कुँए से अपने को निकालो । जब तक सदाचार का पूरी तौर से पालन नहीं किया जाय—कभी गिर जाय कभी पालन करे—तब तक वह फल बहुत दूर है ।—यह तो गो० तुलसी दास जी का वचन हुआ । कबीर साहब और गुरु नानक साहब के लिये तो मुझ से पूछाना ही क्या है ? आम तौर से लोग समझते हैं कि गोस्वामी तुलसी दास जी केवल स्थूल उपासना में लगे थे और कबीर साहब तथा गुरु नानक साहब केवल निर्गुणवादी संत थे । आप उनके साहित्य को पढ़िये, केवल सुनी-सुनाई बात से संतों के प्रति अश्रद्धा, अपने लिये बहुत हानि कारक है । सूरदास जी, तुलसी दास जी, कबीर साहब सभी अंदर की ओर ले जाते हैं । ईश्वर दर्शन इन्द्रियों से नहीं होता है । उपनिषद् के वाक्यों में भी ईश्वर को आत्मगम्य ❀ बताया है ।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मन साभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ कठोपनिषद् ३।९।

इस परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप अपने आमने प्रत्यक्ष विषय के रूप में नहीं ठहरता । इसको कोई भी चमचक्षुओं द्वारा नहीं देख पाता । मन से बारम्बार चिन्तन करके ध्यान लाया हुआ यह परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से विशुद्ध बुद्धि के द्वारा जो इसे जानते हैं वे अमृत स्वरूप हो जाते हैं ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन । यमेवैष तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥ कठोपनिषद् २।२३।

अर्थः—यह आत्मा प्रवचन से विदित होने योग्य नहीं है, न मेधा (ग्रन्थ-धारण शक्ति) से ही और न केवल बहुत श्रवण करने से ही जाना जा सकता है । साधक जिस आत्मा का वरण करता है उस वरण करने वाले आत्मा द्वारा यह आत्मा स्वयं ही प्राप्त किया जाता है । उस आत्मा के प्रति वह परमात्मा अपने परमार्थिक स्वरूप को प्रकट कर देता है ।

"आतम गम्य भजहिँ जेहि सन्ता"

इसी शरीर में जीवात्मा और परमात्मा है फिर भेंट क्यों नहीं होती है ? इसका कारण क्या है ? माया और छाया का आवरण जो जीव पर पड़ा है, यह आवरण जब तक नहीं हँटे तब तक पहचान नहीं हो सकती । इस आवरण रूप का जहाँ तक पसार है, वहाँ तक यह किस पर आवरण है ? क्या पूर्ण परमात्मा माया के आवरणों से आवृत्त हैं ? नहीं, वह माया के पसारों को भर कर और कितना विशेष है कुछ पता नहीं ❀। उसका अंश रूप ही ढँका है, पूर्ण रूप नहीं। यह अंश टूटा हुआ नहीं, बल्कि जैसे महदाकाश का अंश मठाकाश । जैसे एक ही आकाश ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है । यह आपके शरीर रूप आवरण के अन्दर भी है । उसी तरह परमात्मा आप के अन्दर हैं, किन्तु आप उसका दर्शन नहीं कर सकते हैं, क्यों कि आप इन्द्रियों के द्वारा ही कुछ जानते हैं और आपकी इन्द्रियां स्थूल हैं । उन स्थूल इन्द्रियों से परमात्मा को कैसे पकड़ सकते हैं । स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्व का ग्रहण नहीं हो सकता । परमात्मा अनादि अनन्त असीम है । जो पदार्थ जितना व्यापक होता है, वह उतना ही विशेष सूक्ष्म होता है । बर्फ, पानी और वाष्प की उपमा से बोध कीजिये । जो अनादि अनन्त तत्व है वह सबसे विशेष सूक्ष्म है । जो सबसे विशेष सूक्ष्म होगा वह सब में घुस सकता है। उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों को स्थूल हाथ से नहीं पकड़ सकते । इसलिये वेदों में आया है कि परमात्मा इन्द्रियातीत हैं । वह चेतन आत्मा के ज्ञान में आने योग्य हैं ; वह पकड़ा क्यों नहीं जाता है ? कबीर साहब ने कहा है—

"सुरत फँसि संसार में; ताते पड़िगा दूर।
सुरत बांधि सुस्थिर करो; आठो पहर हजूर ॥"

अपने को इन्द्रियों से और शरीरों से बिना छुड़ाये केवल बाहर-बाहर के भागने से

❀ वायुर्यथैको भुवन प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव । एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ कठोपनिषद् २।१०।

व्याख्या—

एक ही वायु अव्यक्तरूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, तथापि व्यक्त में भिन्न-भिन्न वस्तुओं के संयोग से उन-उन वस्तुओं के अनुरूप गति और शक्ति वाला दिखलायी देता है । उसी प्रकार समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमेश्वर एक होते हुए भी उन-उन प्राणियों के सम्बन्ध से पृथक्-पृथक् शक्ति और गति वाला दीखता है, किन्तु वह उतना ही नहीं है, उन सब के बाहर भी अनन्त—असीम और विलक्षण रूप से स्थित है । भाव यह है कि आधारभूत वस्तु के अनुरूप ही वायु की महिमा का प्राकट्य होता है। किन्तु वायु की महिमा उतनी ही नहीं है जितनी कि हम देखते हैं । उसी तरह परमात्मा की महिमा है। उनकी शक्ति के अणुमात्र से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाना प्रकार की आश्चर्यमय शक्तियों से समपन्न हो रहा है।

परमात्मा पकड़ा नहीं जा सकता । जाग्रत में इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में फँसती हैं, स्वप्न में स्वयम् अपने अन्दर जाते हुए पाते हो कि मैं अब सोता हूं । तन्द्रा में बाहर से कुछ अचेतपन होता जाता है, उस समय गला झुक जाता है, हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं, —इस समय भीतर की ओर शक्ति सिमटती है । जिभ्या पर मिठाई रहने से भी मीठा मालूम नहीं होता । बहिर्मुख से अन्तर्मुख होना बाहर के विषयों से छूटना होता है । इससे जानने में आता कि बाहर से भीतर होने पर इन्द्रियों का विषयों से छूटना होता है । केवल स्थूल विषयों से ही नहीं, सूक्ष्म विषयों से भी छूटना होता है । इसी को कबीर साहब ने कहा है— "भक्ति सतो गुरु आनी"— सतगुरु की भक्ति दूसरी है । इसी भक्ति का उपदेश गुरु महाराज करते थे और मैंने जो सीखा है उसी को आप लोगों के सामने रक्खा । अन्तर में प्रवेश करने के लिये आप मानस जप और मानस ध्यान करके दृष्टि योग और नादानुसन्धान कीजिए । दृष्टि योग में बिन्दु ध्यान होता है । यह बिन्दु सूक्ष्म है, इसको मन से गढ़ा नहीं जाता । बिन्दु वह है जिसका स्थान है, परिमाण नहीं । परिमाण रहित सूक्ष्मतम पदार्थ को बिन्दु कहते हैं । आपकी दृष्टि जहां सिमट कर रहेगी, वहीं बिन्दु उत्पन्न होता है । जहां बिन्दु है, वहीं नाद है । "बिन्दु में तहँ नाद बोलै रैन दिवस सुहावनं " —पलटू साहब । " बिन्दु पीठ विनिर्भिद्य नाद लिंगमुपस्थिम् " योग-शिखो । "बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरिस्थिम्" ध्यानबिन्दुपनिषद् । मुसलमान भाइयों के लिये—

"सुनला मकां पै पहुँच के तेरी पुकार है ।
है आ रही सदा से सदा यार देखना ॥
मिलना तो यार का नहीं मुश्किल मगर तकी ।
दुश्वार तो ये है कि है दुश्वार देखना ॥
—तुलसी साहब ।

इसमें दृष्टि साधन पर जोर दिया गया है ।

फिर कहा—

"तुलसी बिना करेम किसी मुर्शिद रसीदा के ।
रहे नजात दूर है उस पार देखना ॥"
—तुलसी साहब

"दुर्लभो विषय त्यागो दुर्लभं तत्व दर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था; सद्गुरोः करुणां बिना ॥"
बाराहोपषिद् ।

गुरु चाहिए, साधन की युक्ति चाहिए और इसके लिये प्रयास चाहिये । जो इसका अभ्यास करता है वह भक्ति की चरम सीमा तक पहुंचता है ।

फिर भी किन्हीं का कहना है कि भगवान् को गुरु मानकर चलना बहुत उत्तम है । श्री राम चरित मानस में भगवान् श्री राम ने परम भक्तिन-साधिका शबरी जी के प्रति जो नवधा भक्ति का उपदेश दिया है उसमें— "गुरु पद पंकज सेवा; तीसरि भगति अमान" का कथन करके अन्त में शबरी जी को कहा है कि "सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे" । इससे विदित होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को उपर्युक्त नवधा भक्ति की विधि से भक्ति की साधना करनी चाहिए । यह प्रसिद्ध है कि

शबरी जी मातङ्ग मुनि की शिष्या थीं।
श्री मीराबाई जी का यह शब्द है—

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की।
पल पल नैनन पानी ॥
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत।
कसक कसक कसकानी ॥
रात दिवस मोहि नींद न आवत।
भावे अन्न न पानी ॥
ऐसी पीर विरह तन भीतर।
जागत रैणि विहानी ॥
ऐसा वैद मिलै कोइ भेदी।
देश, विदेश पिछानी ॥
तासों पीर कहौं तन केरी।
फिर नहिं भरमौं खानी ॥
खोजत फिरौं भेद वा घर की।
कोइ न करत बखानी ॥
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु।
दीना सुरत सहदानी ॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना।
तब मोरी पीर बुझानी ॥
मीरा खाक खलक सिर डारी।
मैं अपना घर जानी ॥

यह शब्द श्री मीराबाई जी के गुरु का पता बताता है। सहजोबाई तथा दयाबाई के गुरु श्री चरण दास जी महाराज थे। उनकी वाणियों को पढ़ कर देख लीजिये—

"चरण दास गुरु सहजो करे,
नमो नमो बारम्बार।" और

"चरण दास सूं किरपा सहजो,
करम भरम भयो छारा।" आदि।

शिक्षा और दीक्षा सब को चाहिये, परन्तु कान फूंकना कोई दीक्षा नहीं है और न अध्यात्म पथ में इसका कोई अर्थ है। भक्तिन सिस्टर निवेदिता श्री स्वामी विवेकानंद जी की शिष्या थीं। श्री समर्थ राम दास जी महाराज (क्षत्रपति श्री शिवाजी राव के गुरु) की भी शिष्याएँ थीं। भगवान् बुद्ध और कबीर साहब आदि संतों की भी शिष्याएँ थीं। जिससे विदित होता है कि स्त्रियों के वास्ते पति सेवा और पातिव्रत धर्म का पालन के सहित अध्यात्म धर्म (मोक्ष धर्म) के पथ में योग्य गुरु से शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है। तभी तो भक्तवर श्री जयदयाल जी गोयन्दका महाराज जी अपने परमार्थ पत्रावली में गुरु मंत्र जपने कहते हैं और पुरुषों तथा महिलाओं के समाज में भी बैठकर उन्हें शिक्षा देते हैं। जब भगवान् श्री राम स्त्री-पुरुष सभी के लिये गुरु-सेवा की विधि त्रेतायुग के प्राचीन काल में ही दे गये हैं, तब संतों का स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा देकर गुरु बनाना भगवान् के उपदेश के अनुकूल ही है और युक्ति संगत भी है। यदि स्त्री के पति स्वयं ही—योगीवर भूपेन्द्र नाथ सान्याल के सदृश—अध्यात्म पथ के पथिक हों तो स्त्री अपने पति के द्वारा ही वह पथ पा सकती है। उसको दूसरे गुरु की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जो विद्या और गुण जिनको हों, उनके द्वारा उनकी विद्या और

मोह का सहर कहर नर नारी, दुइ फाटक घन घोर ।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहौ कठिन झिंझोर ॥१॥
संसय नदी अगाड़ी बहती, विषमधार जल जोर ।
क्या मनुवां तुम गाफिल सोवौ, इहवाँ मोर न तोर ॥२॥
निस दिन प्रीति करो साहेब से, नाहिन कठिन कठोर ।
काम दिवाना क्रोध है राजा, बसै पचीसो चोर ॥३॥
सत्तपुरुष इक बसैं पछिम दिसि तासों करो निहोर ।
आवै दरद राह तोहिलावै, तब पैहो निज ओर ॥४॥
उलटि पाछिलो पैड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहो निज ठौर ॥५॥

क्या स्वयं बिना मार्ग पर चले कोई यह कह सकता है कि "सत्त पुरुष इक बसै पछिम दिसि.....निहारे उलटि पाछिलो ..... पसरा मना बटोर"। क्या पाठकों को अल्प मात्र भी संदेह हो सकता है कि कबीर साहब साधन मार्ग में एकदम कोरे थे और बिना साधन मार्ग जाने एकाएक लिफ्ट (Lift) पर बैठकर परमात्मा के दरबार में उपस्थित हो गये।

और देखिये:—

चली मैं खोजमें पियकी, मिटी नहिँ सोच यह जियकी॥१॥
रहै नित पास हो मेरे, न पाऊँ यार को हेरे ॥२॥
विकल चहु ओर को धाऊँ, तबहु नहिं कंत को पाऊँ॥३॥
धरूँ केहि भाँति से धीरा, गयो गिरि हाथ से हीरा ॥४॥
कटी जब नैन की झाईं, लख्यो तब गगन में साईं॥५॥
कबीरा सबद कहि भासा, नैन में यार को वासा ॥६॥

जब भगवान् ने स्वयं उन्हें खींचकर अपने पास उपस्थित कर लिया तब फिर वे पियकी खोज में क्यों चले तथा व्याकुल होकर चारों ओर क्यों दौड़ने लगे तथा अधीर क्यों हो उठे ? क्या उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर कोई साधक कह सकता है कि बिना साधन मार्ग जाने उन्होंने अनायास ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया ? क्या उपर्युक्त पद्य में साधन-मार्ग साफ-साफ परिलक्षित नहीं होता ?

पुनश्च:—

मुरसिद नैनों बीच नबीहै।
स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अविगत अलख खबी है।
आँखी मद्धे पाँखो चमकै, पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, उतरै भौजल पारा।
सुन्न सहर में बास हमारी, तहँ सरबंगी जावै।
साहेब कबीर सदा के संगी, शब्द महल ले आवै।

उपर्युक्त पंक्तियों में सन्त कबीर साहब ने साधन का मार्ग साफ-साफ खोलकर रख दिया है तथा किसी भी साधक को पढ़ कर समझ में आ सकता है कि साधन मार्ग क्या है, कैसे उसपर चला जाता है तथा उस मार्ग पर चलने वालों को कौन-कौन सी मंजिलें पार करनी पड़ती हैं, किस होकर चलना पड़ता है तथा लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने पर उसका फलाफल क्या निकलता है। मुझे तो ऐसा प्रतीत है कि विद्वान् लेखक को उपर्युक्त पद्यों का अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका, अन्यथा वे सन्त कबीर साहब जैसे साधन-मार्ग के महान ज्ञाता के विषय में इस प्रकार नहीं लिख डालते।

एक पद्य और पढ़िए:—

मिलना कठिन है, कैसे मिलोंगी पिय जाय ॥टेक॥
समझि सोचि पग धरौं जतन से, बार बार डिग जाय।

उँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय ॥१॥
लोक लाज कुलकी मरजादा, देखत मन सकुचाय।
नैहर बास बसौं पीहर में, लाज तजी नहीं जाय ॥२॥
अधर भूमि जहँ महल पियका, हम पै चढ़ो न जाय।
घनभई बारी पुरुष भय भोला, सुरत झकोला खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच में, दीन्हों भेद बताय।
साहेब कबीर पिया से भेंटे, सीतल कंठ लगाय।

उपर्युक्त कड़ियों में सन्त कबीर साहब ने साधन के अनुभवों को खोलकर रख दिया है। उन्होंने साफ-साफ कह दिया है कि उनको सद्गुरु बीच रास्ते ही में मिल गये और परम-प्रभु सर्वेश्वर के दरबार में पहुँचने का मार्ग बतला गये। उस मार्ग पर चलकर वे चरम लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। सर्वेश्वर में मिलकर सदा के लिये तृप्त हो जाते हैं। साथ ही साथ उनको सर्वेश्वर के दरबार की पूरी जानकारी भी है और वे निस्संकोच होकर कहते हैं कि "भूमि जहँ महल पिया का, हम पै चढ़ो न जाय" इसमें यही प्रकट होता है कि उनको परमप्रभु सर्वेश्वर के स्थान का पूरा-पूरा पता है और वे उनसे मिलने के लिये चल भी देते हैं। अब रास्ते में उनको अनेकों विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जो स्वभाविक भी है। मार्गगामी को ही मार्ग के सुगम या दुर्गम होने का अनुभव होता है। जो चुपचाप बैठा है वह कैसे कह सकता है कि "उँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।" जब उनको अनायास ही भगवान् का प्रेम और दया प्राप्त हो गया तब फिर वे अधीर होकर विलाप क्यों करने लगे कि "कैसे मिलौं पिय जाय मिलना कठिन है।" विद्वान् लेखक के विचार से तो उनको अनायास ही भगवान् का प्रेम और दया प्राप्त हो गया। इन परस्पर विरोधी बातों पर मनन करने से कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि सन्त कबीर साहब को साधन का मार्ग मालूम था और उन्होंने उस मार्ग पर चलकर सर्वेश्वर की प्राप्ति के लिये भगीरथ प्रयत्न किया था। उन्होंने साधन का मार्ग साफ खुल कर बता दिया है।

'श्री मद्भागवद् गीता रहस्य' में प्रकाण्ड विद्वान् लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदय जी लिखते हैं— "सारे मोक्षधर्म के मूलभूत अध्यात्म ज्ञान की परम्परा हमारे यहाँ उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीर दास, तुलसी दास इत्यादि आधुनिक साधु-पुरुषों तक अव्याहत चली आ रही है।" (गीता रहस्य,पृष्ठ २५०)। इससे साफ पता चलता है कि सन्त कबीर साहब को भी, अन्य महान संतों की तरह, मोक्ष-मार्ग का पूरा-पूरा ज्ञान था। यह ऐसा विचित्र मार्ग है कि इसका बिना पूरा अनुभव हुए तथा इस पर बिना चले किसी को मोक्ष प्राप्त हो ही नहीं सकता। मार्गज्ञान से अनभिज्ञ, निर्दिष्ट स्थान पर कदापि नहीं पहुंच सकता। सन्त कबीर साहब ने तो स्वयं डंके की चोट से एलान कर दिया है कि 'जग जीते जात जुलाहा।' अब इससे विशेष वे कहते ही क्या!

उदित नारायण चौधरी 'सत्संगी'
सभापति, जिला शिक्षक संघ, भागलपुर।

सम्पादकीय—

संतों की क्रान्तिकारिता।

कोई ऐसा देश नहीं और कोई ऐसा काल नहीं जब संत न हुए हों।

चाहे वे जहां कहीं भी क्यों न रहें, एक काम वे अवश्य करते हैं। वह काम है सत्संग के द्वारा सत्य का प्रचार। इस कार्य के लिये उन्हें जो कुछ भी यातना सहनी पड़ती है, वे सहते हैं। और तो और, जान तक की बाजी लगा कर भी वे इस काम को पूरा करते हैं। कौन नहीं जानता कि संत सुकरात, संत ईसा मसीह और संत मंसूर को अपनी जानें देनी पड़ीं। बात असल यह है कि परम्परागत अन्याय के विरुद्ध यदि आवाज उठाई जाती है तो सुविधा प्राप्त वर्ग के निहित स्वार्थ पर ठोकर लगती। इसलिये वे तिलमिला उठते हैं और आवाज उठाने वाले पर वार करना शुरु कर देते हैं। यह सभी देशों में होता है। भारतवर्ष में भी हुआ और हो रहा है।

भारतवर्ष में वर्ण-व्यवस्था कब से प्रतिष्ठित है, इसका ठीक काल निरूपण नहीं हो सका है। हां, इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि यहां वर्ण-व्यवस्था बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

इस अन्यायपूर्ण परम्परा के विरुद्ध आवाज उठानेवाले सर्व प्रथम व्यक्ति संत विश्वामित्र हैं। फिर संत बुद्ध के दर्शन हमें होते हैं। उनकी समदर्शिता ने शूद्रों और स्त्रियों को भी उनका यथोचित अधिकार दिया। संत महावीर भी वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं रखते थे। इसके बाद नाथ पंथी संतों ने भी इसके विरुद्ध आवाज उठायी। फिर हम महान संत कबीर को अपने बीच पाते हैं। उनकी क्रान्तिकारिता तो गजब थी। "वे किसी भी सिद्धान्त को निर्भ्रान्त रूप से सर्वमान्य मानकर नहीं चलते और न उसके आधार स्वरूप किसी धर्म ग्रन्थ वा आप्त वाक्य की ही प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं। इनकी धारणा है कि प्रचलित वेद कुरानादि मान्य ग्रन्थ जिनका आश्रय लेकर सर्व साधारण अपने-अपने मतों का अनुसरण करते हैं, बहुत सी भ्रमात्मक बातों से भी भरे पड़े हैं और उनकी व्याख्या करनेवालों ने वाग्जाल को और विस्तृत बना दिया है। चारों वेदों के जानकार समझे जाने वाले पंडित उन्हीं में उलझ उलझ कर मरते रहते हैं; वे उनकी व्याख्या तो करते हैं, किन्तु भीतरी बातों से वे स्वयं अनभिज्ञ रह जाते हैं।" इस तरह का क्रान्तिकारी विचार रखनेवाले संतों के विरुद्ध सुविधाप्राप्त वर्ग जो कुछ भी कर सकता है सो उसने किया और आज भी करते हैं। परम संत स्वामी मेंहींदासजी महाराज को जिन्दा जला डालने का प्रयत्न किया गया।— दुष्टों का प्रयास असफल हो गया यह बात दूसरी है।

क्रान्तिकारिता की इस परम्परा को संतों ने बनाये रक्खा है और आज भी उनका काम जारी है।

इधर तो सरकार ने संतों के इस कार्य की महत्ता को स्वीकार करके कानून भी बना दिया है कि वर्ण के कारण कोई भी किसी से अपमान जनक व्यवहार नहीं कर सकता।

रजिस्टर्ड नं० पी० ७२६

छप गई ! छप गई !! छप गई !!!

स्वामी मेँहीँ दास जी महाराज द्वारा प्रणीत

'वेद दर्शन योग'

चारो वेदों का मन्थन करके पूज्य स्वामी जी महाराज ने १०० मंत्रों को नवनीत के रूप में आपके समक्ष रक्खा है।

इन मंत्रों का संबन्ध ईश्वर भक्ति, ज्ञान, मोक्ष, सदाचार, विन्दुध्यान, नादध्यान, सत्संग आदि महत्वपूर्ण विषयों से है।

साथ ही, भारतीय संतों की वाणी से इन वैदिक मंत्रों का साम्य दिखलाकर पूज्य स्वामी जी महाराज ने वैदिक धर्म, साहित्य तथा साधना पद्धति को सरल, सुबोध तथा सर्व सुलभ कर दिया है।

अध्यात्म प्रेमी साधकों के लिये यह पाठ्यग्रंथ परमोपयोगी है।

३२ पौंड के कागज पर छपी फिर भी मूल्य केवल १।) सवा रु०।

पुस्तक मिलने का पता :—

श्री संतमत सत्संग मन्दिर—पत्रालय—मनिहारी, पूर्णियाँ।

शीघ्र ग्राहक बनिए !

परम संत स्वामी मेँहीँ दास जी महाराज को उनके भक्तों तथा प्रेमियों के द्वारा शीघ्र ही एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जायगा। मूल्य लगभग ६) रुपये। अभी से ग्राहक-सूची में नाम दर्ज कराने वाले सज्जनों से केवल ५) रु० ही लिये जायँगे। हजार से ऊपर ग्राहक बन चुके हैं। आप भी शीघ्रता करें।

अभिनन्दन-ग्रन्थ-समिति
शान्ति सन्देश कार्यालय
बनैली प्रेस, भागलपुर।

चन्द्रधर प्रसाद नन्दक्यूलियार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
दि बनैली प्रेस, भागलपुर में मुद्रित।